हिन्दी भाषा : उन्नति अथवा अवनति पथ पर (एक विश्लेषण)

डा0 कामना जैन*

सारांश

समस्त सृष्टि में वाक् शक्ति केवल मनुष्य को प्राप्त है। जिसको प्रत्यक्ष करने का एक मात्र माध्यम है 'भाषा'। भाषा सम्बन्धों की जननी, सामाजिक जीवन का आधार तथा व्यक्ति व समाज का दर्पण भी है। विचारों, तकनीकों, तथ्यों और अन्वेषणों आदि का विकास भाषा की ही महिमा है। भारत एक बहु भाषीय देश है, यहा अनेक भाषाएँ और बोलियाँ बोली जाती हैं। इनमें से 22 भाषाएँ संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल हैं। भाषा की विविधता भारतीय समाज की अनूठी विरासत है।

सैंकड़ों वर्षों पूर्व दक्षिण भारत के आलावार संतों, उत्तर भारत के सिद्धों, नाथ पंथियों, जोगियों आदि ने हिन्दी के द्वारा ही जनता तक अपने विचार फैलाये थे। स्वतंत्रता संघर्ष के दिनों में महात्मा गाँधी जैसे नेताओं ने देश के कोने–कोने में घूम कर हिन्दी में देश वासियों को जगाया और स्वराज का मंत्र दिया कश्मीर से कन्याकुमारी तक और कच्छ से असम तक हिन्दी ने ही लोगों को राष्ट्रीयता के एक सूत्र में पिरोया इसलिए संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने का प्रस्ताव रखा गया किन्तु अहिन्दी भाषी प्रान्तों के कुछ लोगों व दलों ने अपनी राजनीति व नेतागिरी चमकाने के लिये हिन्दी का विरोध प्रारंभ कर दिया, जिससे भारत की भाषायी विविधता की एकता के मध्य द्वेष उत्पन्न हो गया। राजनीतिक दबावों के कारण हिन्दी को केवल राज भाषा के दर्जे तक ही सीमित रखा गया और हिन्दी के साथ साथ अंग्रेजी भाषा को अनिश्चित काल के लिए सहभाषा को दर्जा दिया गया।

हिन्दी की शनैःशनैः बढ़ती इस अवनति में सुधार करने के लिये हिन्दी दिवस, हिन्दी पखवाड़ा, विश्व हिन्दी सम्मेलन आदि कार्यक्रमों को बढ़ाया दिया गया। जिससे हिन्दी के प्रचार–प्रसार को बढ़ावा मिला। वर्तमान में तो वैश्वीकरण के दौर में हिन्दी विश्व पटल पर व्यापार व विज्ञापन की सशक्त भाषा के रूप में उभर रही है। हिन्दी यूनेस्कों की भाषा तो बन ही चुकी है और संयुक्त राष्ट्र की अधिकारिक भाषा बनने की दिशा में प्रयासरत है। अतः हिन्दी के वैश्विक प्रसार व राष्ट्रीय एकता अखण्डता की रक्षा के लिये संकीर्ण भावनाओं का परित्याग आवश्यक है। राष्ट्र भक्ति तभी सिद्ध होगी जब बिना किसी विरोधाभास के हिन्दी को अपनाया जाये। हिन्दी की उन्नति में ही हम सब की उन्नति है इस सनातन सत्य को नही भूलना चाहिए–

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।।

मुख्य शब्द– हिन्दी, राष्ट्रभाषा, संविधान, राजनीति, चुनौतियाँ, विकास

प्रस्तावना

समस्त सृष्टि में वाक् शक्ति केवल मनुष्य को प्राप्त है, जिसको प्रत्यक्ष करने का एकमात्र माध्यम है भाषा। ''यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति'' (यजुर्वेद) के आधार पर कहा जा सकता है कि मानसविचारों की अभिव्यक्ति के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों का व्यवहार ही भाषा है।[1]

भाषा शब्द संस्कृत की 'भाष्' धातु से निष्पन्न है, जिसका भाव है– बोलना अथवा अभिव्यक्त करना। प्राणियों के मन मस्तिष्क में उपस्थित आवश्यकताओं, भावों, विचारों और प्रतिक्रियाओं इत्यादि को वाणी के माध्यम से अभिव्यक्त करने के लिए प्रयुक्त साधन को भाषा कहा जा सकता है।

इदमन्धंतमः कृत्स्नं जायेत् भुवनत्रयं।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिः संसारं न दीपयेत्।। –महाकवि दण्डी काव्यादर्श

अर्थात् यह सम्पूर्ण त्रिलोक अन्धकारमय ही होता यदि शब्द अर्थात् भाषारूपी ज्योति इसे प्रकाशित ना करती।[2]

इस अर्थ में भाषा मात्र मनोभावों की अभिव्यक्ति नहीं है, वरन किसी समाज विशेष की सम्पूर्ण संस्कृति एवं सभ्यता की दिग्दर्शिका है। भाषा के विकास से पूर्व गुफा मानव ने अपने भावों एवं संदेशों के आदान–प्रदान के लिए सांकेतिक माध्यम एवं चित्रशैली का प्रयोग किया। शनैः शनैः प्रत्येक समाज ने भाव–सम्प्रेषण एवं सूचनाओं के आदान–प्रदान के लिए भाषा एवं शब्दावली का गठन किया। वर्तमान में तो भाषा सामाजिक जीवन का आधार है, इसके बिना समाज के अस्तित्व की कल्पना

* असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, एस.एस.डी.पीसी गर्ल्स कॉलेज, रूड़की, जिला हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

तक नहीं की जा सकती। भाषा के माध्यम से ही शिक्षा, साहित्य, विज्ञान, तकनीक, संस्कृति, धर्म–दर्शन, कला कौशल, वाणिज्य प्रशासन आदि का विकास कर मानव प्रकृति के समस्त प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। अपनी योग्यता ज्ञान व तकनीक द्वारा मानव ने सम्पूर्ण प्रकृति को अपने नियंत्रण में कर लिया है। यदि भाषा ना हो तो प्रत्येक मनुष्य को अपनी शुरूआत वहीं से करनी होगी, जहाँ से उसके परमपूज्य आदि मानव ने की थी। भाषा मानव समाज की आधारशिला है।[3]

भाषा समाज की प्रत्येक अवस्था में उसकी संस्कृति को प्रतिबिम्बित कर उसी के साथ पनपती, पुष्पित व पल्लवित होती है। संस्कृति में परिवर्तन के साथ भाषा में भी परिवर्तन होता है और कई बार भाषा में परिवर्तन आने से संस्कृति भी प्रभावित होती है। संस्कृति, किसी राष्ट्र की आत्मा होती है। राष्ट्र की जनता उस राष्ट्र का शरीर है। उस जनता की वाणी राष्ट्र की भाषा है। भाषा, सभ्यता और संस्कृति की वाहक है और उसका अंग भी। विदेशी भाषा द्वारा संस्कार रोपण असम्भव है।[4] इस सन्दर्भ में देखा जाए तो भारत एक बहुभाषिक, बहुसंस्कृति से युक्त, विविधता में एकता को समाए हुए एक अनूठा देश है।

हिन्दी भाषा का ऐतिहासिक संदर्भ

हिमालय से सेतुबन्ध तक सारे भारतवर्ष के धर्म, दर्शन, विज्ञान, चिकित्सा आदि विषयों की भाषा कुछ सौ वर्षों पहले तक एक ही रही है, यह भाषा संस्कृत थी।[5] विख्यात् उक्ति है–''संस्कृतिः संस्कृताश्रिता'' अर्थात् भारतीय संस्कृति, संस्कृत भाषा पर आश्रित है। संस्कृत, भारत के अतीत की जनभाषा है। जिसने विश्व को सर्वप्रथम साहित्य के स्वरूप से रूबरू कराया था।[6] किन्तु वर्तमान में भारत एक बहुभाषी देश है। यहां लगभग 1652 से अधिक भाषाएं बोली जाती हैं, जिसमें से 63 भाषाएं अभारतीय हैं। इसमें से अधिसंख्य आर्य भाषाएं हैं, जो सस्कृत के प्रभाव से उत्पन्न हुई हैं। दक्षिण भारत में द्रविड़ भाषाएं– तमिल, तेलगू, कन्नड़, मलयालम बोली जाती हैं। भारत में इतनी भाषाएं हैं तो एकीकरण किस प्रकार सम्भव है?[7]

यह सत्य है कि भाषा लोगों के मध्य संचार का प्रमुख साधन है। किंतु इससे भी अधिक किसी भी राष्ट्र के विभिन्न कामों व निवासियों के मध्य भावनात्मक एकता का होना अनिवार्य आवश्यकता है। विभिन्नताओं के होते हुए भी भारतीय संस्कृति व जनजीवन में यह एकात्म भाव पाया जाता है। विष्णु पुराण में उल्लिखित है–

उत्तरां यत् समुद्रस्य हिमाद्रश्चैव दक्षिणम्,
वर्ष तद् भारत नाम भारती यत्र सन्ततिः।।[8]

अर्थात् ''समुद्र के उत्तर में, हिमालय के दक्षिण में जो (देश) है, वह भारत नाम का खण्ड कहलाता है और जहाँ के लोग भारत की संतान कहलाते हैं।''

भारत में यह एकत्व, विविधता में एकता, एकराष्ट्र की बलवती भावना, हर युग के धर्म, सम्प्रदाय, संस्कृति, रहन–सहन, रीतिरिवाज से लेकर भाषा तक विविध क्षेत्रों में स्पष्टतः परिलक्षित किया जा सकता है। कबीर ने भाषा को बहता नीर कहा है।[9] इस विशाल देश में भाषाओं की कई सरिताएं प्रवाहित होती हैं, जो अन्ततः संस्कृति रूपी सागर में जाकर रूकती हैं। वैदिक सूचनाओं से लेकर सूफियों और संतों की वाणियों तक हमारे पास जो अक्षय भण्डार है, वह हमारी भाषायी विरासत और सांस्कृतिक वैभव की अवगाहनी है। कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक तथा अरूणाचल से गुजरात तक फैले इस विशाल भूखंड को भारतीय संस्कृति ने ही जोड़कर रखा है। भाषा की भिन्नता के बावजूद भी हमारी सांस्कृतिक एकता कायम रही है।[10]

आर्य अनार्य एक्य से लेकर हिन्दू मुस्लिम एक्य तक देश के चारों कोनों पर स्थापित तीर्थों तक खान–पान से लेकर दीवाली, नोरोज जैसे त्यौहारों तक तथा दक्षिण भारत में उत्पन्न राधा और बालकृष्ण की उपासना से लेकर हिन्दी की विविध प्रांतीय धर्मों एवं जातीय लेखकों तक में इसी भावना के सूत्र बिखरे पड़े हैं।[11] सैकड़ों वर्षों पूर्व दक्षिण भारत के आलावार संतों, उत्तर भारत के सिद्धों, नाथपंथियों, जोगियों आदि ने हिन्दी के द्वारा ही जनता तक अपने विचार फैलाए थे– हिन्दी उनके विचारों का माध्यम बनी थी। रामानंद, रामानुज, वल्लभाचार्य, विट्ठलनाथ आदि महात्माओं ने ही हिन्दी को राष्ट्र की एक आम भाषा बना दिया था। अमीर खुसरो, कबीर, नानक, रैदास, मीराबाई, तुलसीदास, सूरदास और गोविन्द सिंह की वाणियाँ हिंन्दी में ही प्रकट हुई।[12]

हांलाकि विदेशी आक्रमणों के दौरान भारतीय संस्कृति तथा हिन्दी भाषा पर अनेक प्रहार हुए। हिन्दी को उसके प्रतिष्ठित स्थान से कई बार विस्थापित किया गया। किन्तु भारतीय संस्कृति में वसुधैव कुटुम्बकम् एवं अतिथि देवो भवः के भावों ने सब को अपने में आत्मसात् कर लिया। इसलिए फिराख गोरखपुरी ने कहा–

''सरजमीने हिंद पर अकवा–ए–आलम के फिराक

काफिले बसते गए, हिन्दुस्ताँ बनता गया''

भारत के ऊपर ईसा की तीसरी–चौथी शताब्दी से लेकर सत्रहवीं, अठारवीं सदी तक अनेक आक्रमण हुए। जब भी ऐसे आक्रमण होते हैं, या राष्ट्र पराभव में पड़ता है तो सबसे बड़ा नुकसान भाषा और संस्कृति का होता है। यवनों, तातरों, मुगलों तथा अंग्रेजों का आक्रमण हुआ तो, हर पराजय के बाद भाषा और संस्कृति दोनों के ऊपर संकट मँडराए। विदेशी आक्रन्ताओं ने भारतीय संस्कृति को लीलने की अनेक चेष्टाएं की तथा भाषा का अस्तित्व भी प्रश्न चिन्ह के रूप में खड़ा हुआ। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि भारतीय जन ने अनेक दुःसह परिस्थितियों और विपदाओं का सामना करते हुए भी संस्कृति की रक्षा की और भाषा को जिलाए रखा। यही कारण है जो भारत 'भारत' बना।[13] 12वीं सदी के बाद तुर्कों और अफगानों के आगमन से राजभाषा फारसी बनी, किन्तु आंशिक रूप से तत्कालीन केन्द्रीय भाषा पुरानी हिन्दी को भी सहभाषा के रूप में स्वीकृति मिली थी। हिंदी के सहभाषा होने का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि शेरशाह सूरी से लेकर बाद तक के तुर्क बादशाहों के सिक्कों पर प्रायः फारसी के साथ हिंदी का भी प्रयोग मिलता है। मुगल शासन में हिंदी सहराजभाषा के रूप में थी। अकबर के दरबार में रहीम खानेखाना हिंदी के प्रसिद्ध कवि थे। जहाँगीर को भी हिंदी का अच्छा ज्ञान था। औरंगजेब की पुत्री जैबुन्निसाँ हिंदी में कविताएं करती थी।[14] मुगलों के पतन के बाद फारसी का महत्व घटता गया। अंततः 1837 में फारसी का स्थान अंग्रेजी ने ले लिया और स्थानीय भाषाओं को सहराजभाषा बनाया गया। जैसे बंगाल में अंग्रेजी के साथ बंगला, महाराष्ट्र में अंग्रेजी के साथ मराठी। हिंदी प्रदेश (उत्तर प्रदेश, राजपूताना, मध्य भारत, बिहार) में अंग्रेजी के साथ हिन्दुस्तानी की अरबी फारसी, मिश्रित शैली उर्दू को कचहरियों की भाषा बनाया गया।[15] किंतु शनैः शनैः ब्रिटिश सरकार के बढ़ते जुल्मों तथा परतंत्रता के खिलाफ भारतीयों की आत्मचेतना ने देश में स्वतंत्रता हेतु संघर्ष प्रारम्भ कर दिया, तब राष्ट्रीय स्तर के नेताओं के समक्ष यह समस्या आई कि कैसे सम्पूर्ण देश को गुलामी के खिलाफ एक जुट किया जाए? तब देश के बड़े भू–भाग में बोली जाने वाली हिंदी वह सम्पर्क भाषा बनी जिसने राष्ट्रीय एकता, अखण्डता व अस्मिता हेतु सम्पूर्ण देश को एकजुट किया। साथ ही जनजन में राष्ट्र भक्ति व राष्ट्र प्रेम की भावना भर दी। राष्ट्रीय स्तर के जन नायकों, राजा राम मोहन राय, केशवचंद्र सेन, स्वामी दयानंद, महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, राजगोपालाचारी, सुभाष चंद्र बोस, लाला लाजपत राय, मौलाना अबुल कलाम आजाद आदि ने स्पष्ट समझ लिया था कि इस देश में करोड़ों लोग आपस में वार्तालाप का माध्यम हिंदी को बना सकते हैं। यही करोड़ों–करोड़ों लोगों की एक साँझी भाषा है।[16]

हिंदी की विवादित एवं संवैधानिक स्थिति

भाषा की विविधता, भारतीय समाज की अनूठी विरासत है, किन्तु यह विशेषता संकट तब बन जाती है, जब यहां बोली तथा लिखी जाने वाली अनेक भाषाओं के कारण लोगों के मध्य द्वेश उत्पन्न होता है। अंग्रेजों की देन 'फूट डालो और राज करो' नीति को अंग्रेजों के जाते ही हमारे देश के स्वार्थी नेताओं ने हृदयंगम कर लिया और अपनी राजनीति चमकाने, सत्ता हासिल करने के लिए जनता को साम्प्रदायिक, प्रांतीय, भाषायी आदि मुद्दों पर उलझा दिया। स्वतंत्रता के पश्चात् जब हिंदी को राष्ट्र भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की चर्चा प्रारम्भ हुई तो भाषागत आधार पर संकुचित भावनाओं, दबाव गुटों व राजनीतिक दलों का उद्भव होने लगा। भाषा के नाम पर पृथक राज्यों की मांग व राजनीतिक हिंसक आंदोलनों ने देश के समक्ष नया संकट उत्पन्न कर दिया। भाषा के सवाल पर राजनीतिक एकता कहीं खण्डित ना हो जाए, यह डर भारत के लोकतंत्र में साफ झलकता है।[17]

कांग्रेस ने भाषा के आधार पर राज्य बनाने की मांग 1921 में की थी। 1927 में उसने भाषायी प्रान्तों के पुनर्गठन का प्रस्ताव पास किया। कांग्रेस ने 1927 से 1947 के मध्य कई बार भाषागत प्रांतो में वचन बद्धता दोहराई। 1945–46 के कांग्रेस के चुनाव घोषणा पत्र में कहा गया कि प्रशासनिक ईकाईयों को भाषागत व सांस्कृतिक आधार पर गठित किया जाए।[18] मार्शल विंड मिलर ने कहा कि, ''भाषायी आंदोलनों को हवा देकर कांग्रेस पार्टी ने आजादी से पहले वह दानव खड़ा कर दिया, जो एक राष्ट्र के रूप में भारत के अस्तित्व को चुनौती दे रहा है और सरकार की कानून व्यवस्था बनाए रखने की क्षमता पर भी भार डालता है।''[19]

देश को स्वतंत्रता प्राप्त होते ही भाषा को लेकर अनेक महत्वपूर्ण प्रश्न उठ खड़े हुए। उदाहरण के लिए, भारत की राष्ट्र भाषा क्या होगी, स्वतंत्र भारत में अंग्रेजी भाषा की स्थिति क्या होगी, क्षेत्रीय भाषाओं का स्थान क्या होगा इत्यादि। स्वतंत्र भारत की भाषा क्या होगी, इस प्रश्न पर संविधान निर्माता सभा तथा सभी प्रमुख राजनीतिक दलों के बीच तथा दलों के अंदर भी मतभेद रहा है। कांग्रेस व समाजवादी दल दोनो हिंदी को लेकर आंतरिक रूप से विभाजित थे। साम्यवादी दल हिंदी को राजभाषा बनाने के खिलाफ थे और वे अंग्रेजी को बनाए रखने के पक्ष में थे।[20] साथ ही गैर हिंदी भाषी प्रबुद्ध वर्ग, प्रातों एवं अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा भी हिंदी विरोध प्रारंभ हो गया। 1937 में चक्रवर्ती राज गोपालाचारी मद्रास के मुख्यमंत्री बने तो उन्होंने

मद्रास में हिंदी की शिक्षा अनिवार्य कर दी, किन्तु कालान्तर में वे ही दक्षिण भारत में हिंदी विरोधी आंदोलन के सूत्रधार बने। हिंदी के अनन्य भक्त और प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डा॰ सुनीति कुमार चटर्जी ने कहा था, ''एक संयुक्त एकीकृत भारत की एक भारतीय राष्ट्रभाषा होनी चाहिए, जो देश की एकता का ज्वलंत प्रतीक हो और हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो इस पर आरूढ़ हो सकती है।'' दुर्भाग्य है कि उसी व्यक्ति ने बंगाल की विधान परिषद का अध्यक्ष बनने के बाद हिंदी विरोध का नेतृत्व सम्हाला।[21]

भारत में भाषा और राजनीति का बड़ा गहरा सम्बन्ध रहा है। भाषा ने राजनीति को दिशा दी है, उसने राज्यों का निर्माण किया है। संघीय व्यवस्था के स्वरूप को प्रभावित किया है। राजनीतिक दलों को जन्म दिया है, वह चुनाव में हार–जीत का कारण बनी है, उसके नाम पर आंदोलन हुए हैं, हिंसा की घटनाएं हुई हैं।

भाषा के आधार पर राज्यों के निर्माण की मांग को दबाया नहीं जा सका। सबसे पहले यह मांग आन्ध्रप्रदेश के तेलगू भाषी लोगों की तरफ से उठी। धीरे–धीरे इसने एक जन आंदोलन का रूप धारण कर लिया। पोत्ती श्री रामालू नामक एक कार्यकर्ता ने तेलगू राज्य बनाने की मांग को लेकर आमरण व्रत शुरू कर दिया। 5 दिसम्बर 1953 को उनकी मृत्यु हो गई। फलस्वरूप उस क्षेत्र में हिंसा फैल गई और मजबूर होकर केन्द्र सरकार ने 1953 में आन्ध्रप्रदेश राज्य का निर्माण किया। भाषा के आधार पर राज्यों की मांग ने और जोर पकड़ा। 29 दिसम्बर 1953 को राज्य पुनर्गठन आयोग का निर्माण किया गया। 1956 में राज्य पुनर्गठन अधिनियम पारित किया गया।[22]

महाराष्ट्र, गुजरात, केरल, पंजाब, हरियाणा, नागालैण्ड आदि सभी राज्यों का निर्माण भाषागत आधार पर किया गया। भाषा और संस्कृति के नाम पर राज्यों के विभाजन और नए राज्यों के निर्माण की मांग इतनी बढ़ गई कि वर्तमान में देश में 29 राज्य है।

भाषा का मुद्दा केवल हिंदी और अंग्रेजी तक सीमीत नहीं रहा। मुस्लिम अल्पसंख्यकों की ओर से यह मांग उठी की उर्दू बोलने वालों को भी अपनी भाषा के विकास व संरक्षण के लिए समुचित सुविधाएं दी जाएं। उत्तर प्रदेश में उर्दू को दूसरी राजभाषा बनाए जाने के खिलाफ 1989 के चुनाव से पूर्व बदायूँ में दंगे हुए जिसमें लगभग दो दर्जन लोगों की जानें गई। फलस्वरूप उत्तरप्रदेश व बिहार में उर्दू को दूसरी राजभाषा के रूप में मान्यता दी गई।[23]

भारत में हिंदी भाषा राष्ट्रभाषा के रूप में यद्यपि आमतौर पर स्वीकार की जाती है, तथापि अधिकारिक, रूप में इसे ऐसा कोई दर्जा प्राप्त नहीं है। वस्तुतः संविधान में राष्ट्रभाषा की घोषणा का कोई प्रावधान नहीं है।[24] संविधान में राष्ट्रभाषा शब्द का प्रयोग न करके राजभाषा शब्द का प्रयोग किया गया है। राजभाषा से तात्पर्य उस भाषा से है जिसमें सरकारी कामकाज होता है।[25]

अनुच्छेद 343 में शामिल किए गए एक मध्यमार्गी सूत्र के अधीन देवनागरी लिपि वाली हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया और कहा गया कि भारतीय अंकों का रूप अंतर्राष्ट्रीय होगा। यह अनुमति दी गई कि 15 वर्ष की अवधि तक अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता रहेगा।[26] आशा थी कि 26 जनवरी 1965 के बाद हिंदी को उसका वर्चस्व प्राप्त हो जाएगा। किंतु 50–60 के दशक में भाषायी दंगों, उपद्रव व हिंसा ने इस आशा को धूमिल कर दिया और राष्ट्रीय भक्ति और एकता की प्रेरणा स्त्रोत हिंदी की उपेक्षा कर दी गयी।

1967 में राजभाषा कानून बनाए जाने के दौरान घटी हिंसक वारदातों ने राजभाषा समिति (1955–56) की रिपोर्ट में हिदी का विरोध करने वाले सदस्यों के विचारों को ही प्रतिध्वनित किया। इन सदस्यों को आशंका थी कि हिंदी को राजभाषा बनाए जाने से हिंदी साम्राज्यवाद की नींव पड़ेगी और अन्य भाषाओं की अस्मिता और विकास संकट में पड़ जाएंगे।[27] भाषा की समस्या को राजनीति में घसीटा गया और लोगों ने अपने राजनीतिक हित साधे। इस प्रकार दूषित नेतृत्व ने भाषायी तनाव पैदा किए।[28]

हिंदी के कट्टर विरोध के कारण केन्द्रीय गृह मंत्रालय ने दो राजभाषा अधिनियम बनाए–

प्रथम– अंग्रेजी को अनिश्चित काल के लिए हिंदी के साथ सहभाषा का दर्जा दिया गया।

द्वितीय– जब तक भारत की एक भी प्रांत सरकार हिंदी को अपने राज्य की राजभाषा स्वीकार करने में संकोच करेगी, तब तक हिंदी पूरे संघ की राजभाषा नहीं हो सकेगी।

मार्च 2014 में पुनः केन्द्रीय मंत्रालय के राजभाषा विभाग ने संभी मंत्रालयों व विभागों को सोशल मीडिया पर अंग्रेजी के साथ हिंदी भाषा को प्रमुखता दिए जाने की बात कही थी, तो कई गैर हिंदी भाषी राज्यों के नेताओं ने विवाद खड़ा कर दिया। इस बवाल को शांत करने के लिए सरकार ने सफाई दी कि यह निर्देश सिर्फ हिंदी भाषी राज्यों के लिए है। अन्य राज्यों

पर हिंदी थोपने का उसका इरादा नहीं है।[29] सत्य ही है भाषा सामाजिक एकीकरण या बिखराव का एक महत्वपूर्ण सूत्र है।[30] जिस हिंदी भाषा ने सम्पूर्ण राष्ट्र को गुलामी के खिलाफ एकजुट किया, जहाँ हिंदी बोलना राष्ट्र प्रेम एवं राष्ट्र भक्ति का परिचायक था, वहाँ केन्द्रीय मंत्रालय के द्वारा ऐसी सफाई व वक्तव्य देना, घोर निराशाजनक है, इससे अच्छा तो टर्की के कमालपाशा की तरह स्वतंत्रता के तुरंत पश्चात हिंदी को एक ही दिन में राष्ट्रभाषा घोषित कर देते तो शायद आज हिंदी के ये दुर्दिन नहीं आते कि उसे अपना अस्तित्व ही संकटग्रस्त लगता। ध्यान से सोचा जाए तो हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत, अन्य अन्तर्राज्यीय भाषाओं में परस्पर कोई संघर्ष नहीं है। राष्ट्रभाषा मूलतः कोई समस्या नहीं, मानसिक कुंठाग्रस्त और स्वार्थलोलुप कुछेक व्यक्तियों द्वारा उत्पन्न किया गया व्यर्थ का विवाद है।[31]

आधुनिकीकरण के प्रभाव के कारण आज भारत में अंग्रेजी का बोलबाला है, सत्य है कि वैश्वीकरण के युग में अन्तर्राष्ट्रीय भाषा अंग्रेजी का ज्ञान अति आवश्यक है। किन्तु राष्ट्रभाषा हिंदी के ऊपर संकट तब आता है जब अपने ही देश के अंग्रेजी भाषा–भाषी अपने को श्रेष्ठ व हिंदी बोलने वालों को कमतर समझते हैं। ऐसी मनोवृत्ति कष्टदायक है। शोचनीय व दुःखद स्थिति यह है कि हिंदी को अपने ही घर में विरोध झेलना पड़ रहा है। देश के विभिन्न प्रांत हिंदी के प्रति क्रोध व संकीर्ण भावनाएं रखते हैं। अपनी मातृभाषा के पश्चात वे हिंदी की अपेक्षा अंग्रेजी सीखने व संवाद करने में गौरव का अनुभव करते हैं। वैश्वीकरण और भूमण्डलीकरण के नाम पर एक नए आर्थिक व सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का जन्म हो रहा है। यह नया साम्राज्यवाद चाहता है कि आपका भूगोल और इतिहास आपके पास ना रहे।[32]

विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक राष्ट्र होने की सुखद अनुभूति करने वाली भारत की एक अरब जनसंख्या आज भी अपनी राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर लगभग चुप है। हम उस अंग्रेजी के पूर्णतया मानसिक दास हो गए हैं, जो एक दूरदर्शी अंग्रेज लार्ड मैकाले ने हमें शिक्षा के रूप में दी है।[33] चाणक्य ने कहा था, ''किसी भी राष्ट्र को विनष्ट करने के लिए उस देश की सामाजिक, सांस्कृतिक परम्पराओं पर प्रहार कर उसे नष्ट कर दीजिए, वह देश स्वतः समाप्त हो जाएगा।'' सांस्कृतिक धरातल पर औपनिवेशिक मानसिकता का सर्वाधिक आघात भारतीय भाषाओं व बोलियों को लगा है। भारतीय संसद, भारतीय न्यायालय, भारतीय विद्यालय व संस्थाओं में कमोबेश हिन्दी का प्रयोग नहीं होता। देश के कोने–कोने में अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों का बोलबाला बढ़ रहा है। यही मानसिकता हिंदी को एक दिन समाप्त कर देगी। गांधी ने कहा था देश भाषा का अनादर राष्ट्रीय आत्महत्या है। मेरे लिए हिंदी का प्रश्न स्वराज के प्रश्न से कम महत्वपूर्ण नहीं है।[34]

हिंदी के विकास हेतु प्रयास

निज भाषा की उन्नति हेतु श्रीधर पाठक ने लिखा है–

निज भाषा बोलहु लिखहु पढ़हु गुनहु सब लोग।
करहु सकल विषयन विषैं निज भाषा उपयोग।।[35]

राष्ट्रीय गौरव और संस्कृति को अक्षुण्ण रखने के लिए स्वदेशी की भावना को मजबूत करने की आवश्यकता है। मिल्टन का कथन था कि 'हर राष्ट्र को विदेशी भाषा की अपेक्षा अपनी भाषा में तरजीह देना चाहिए, चाहे यह भाषा अविकसित ही क्यों न हो, क्योंकि विदेशी भाषा का प्रयोग दासता का द्योतक होता है।[36]

हिंदी के अनन्य भक्त व राष्ट्रभाषा के महत्व को समझने वाले बुद्धिजीवी वर्ग ने हिंदी के विकास की आवश्यकता पर ध्यानाकर्षित किया, जिसके फलस्वरूप हिंदी के प्रसार एवं विकास हेतु प्रतिवर्ष हिंदी दिवस, हिंदी पखवाड़ा आदि के माध्यम से हिंदी कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया जाने लगा। वैश्विक स्तर पर हिंदी के प्रसार हेतु नागपुर में प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन किया गया। भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी UNO में प्रवेश पाकर विश्वभाषा के रूप में सामान्य मानव सेवा के लिए बढ़े। यही सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य था। करोड़ों व्यक्तियों द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली इस भाषा को विश्व भाषा के रूप में विकसित करने और UN की छः अन्य विश्व भाषाओं के साथ इसे भी स्वीकार कराने का प्रस्ताव सम्मेलन में स्वीकृत हुआ था।[37] काका साहेब कालेलकर कहा करते थे, ''अहिंसात्मक लड़ाई लड़ने वाली यह भाषा सारे संसार को आजादी का संदेश दे सकती है और दमन के खिलाफ आवाज उठा सकती है।'' हिंदी सारे विश्व में मैत्री और सद्भाव की ध्वजा लहराए। हमारे अमूल्य संदेश सह अस्तित्व, शांति और अहिंसा को दुनिया के दूर दराज स्थान पर फैलाए, यह हम सबकी मंगल कामना होनी चाहिए।[38] 17 अप्रैल 1992 को त्रिनिदाद–टुबैगो के प्रधानमंत्री ने अंतर्राष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन के उद्घाटन भाषण में हिंदी की महत्ता तथा त्रिनिदाद और टुबैगो के विकास में भारतीय मूल के लोगों की कर्मठता को सराहा। यहाँ के लोग अपने को भारत की संतान कहने में गौरव अनुभव करते हैं और धर्म और संस्कृति को पिछले 150 वर्षों से सीने से लगाए हुए हैं।[39] उनका मानना है कि हिंदी के ज्ञान के बिना भारतीय सभ्यता व संस्कृति से जुड़े रह पाना कठिन है।[40] हिंदी एक समृद्धशाली भाषा है।

दुनिया के 136 विश्व विद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई हो रही है। हिंदी का सबसे बड़ा महत्व यह है कि उसे संस्कृत की विरासत मिली है तथा ब्रज, अवधि, मैथिली, राजस्थानी, बुंदेलखण्डी, भोजपुरी, मगही और ऐसी ही अनेक भाषाओं, उपभाषाओं और बोलियों का सामर्थ्य, सहयोग इसे प्राप्त हुआ है।[41]

वर्तमान में लगभग हर बात को सोशल मीडिया में उसकी उपस्थिति से नापा जा रहा है। अतः यह स्वाभाविक है कि इस नई तकनीकी, सामाजिक शक्ति और भाषा के सम्बंध को भी हम समझने की कोशिश करें। हिंदी प्रगति पथ पर निरंतर बढ़ रही है। हिंदी व्यवसाय, वाणिज्य, देशी–विदेशी चैनलों विज्ञापन आदि क्षेत्रों में पूर्ण रूप से अपनाई जा रही है। कुछ चैनल जो केवल अंग्रेजी में थे, जब वे अपने कार्यक्रम हिंदी में प्रस्तुत करने लगे तब उनकी दर्शक दर में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। इससे स्पष्ट है कि हिंदी की प्रगति दिन दूनी रात चौगुनी हो रही है।[42]

डिजिटल हिंदी बढ़ाने के प्रयास भी लगातार बढ़ रहे हैं, जिससे हिंदी राजभाषा के बाद वैश्विक भाषा बन सके। आँकड़ों के आधार पर देखा जाए तो स्टैटिस्टा के मुताबिक हिंदी कुल बोलने वालों के लिहाज से तीसरी और मातृभाषा के लिहाज से दूसरी सबसे बड़ी भाषा है।[43] हिंदी फिल्म उद्योग दुनिया में नंबर दो पर आता है। काम करने वाले श्रमिक वर्ग का एक बहुत बड़ा हिस्सा हिंदी क्षेत्रों से ही पूरे भारत को सप्लाई होता है।[44] हिंदी वेबसाइट, पोर्टल और ब्लॉग आदि पर हिंदी का दायरा तेजी से बढ़ रहा है।

हिंदी के समक्ष चुनौतियाँ

हिंदी के समक्ष चुनौतियाँ भी कम नहीं हैं। इंटरनेट पर 10 सर्वश्रेष्ठ भाषाओं में हिंदी शामिल नहीं है। 95 प्रतिशत गूगल पर अब भी अंग्रेजी ही उपलब्ध है। 0.94 प्रतिशत साइट हिंदी में है।[45] यह सत्य है कि हिंदी का दायरा बढ़ रहा है, किन्तु समस्या यह है कि हिंदी अभी तक खरीदार की भाषा है। बाजार की भाषा है। कुछ हद तक कारोबार की भाषा भी है। लेकिन कैसे इस हिंदी को विक्रेता की भाषा बनाया जाए। शोध और उत्पाद की भाषा बनाया जाए, विदेशों की ही नहीं, देश की भी। जो कम्पनियां अपना माल बेचने के लिए हिंदी पर निर्भर हैं वे अपने उत्पादन के लिए हिंदी का उपयोग नहीं करती हैं। उनके कम्प्यूटरों का सारा हिसाब–किताब अंग्रेजी में होता है। हिंदी क्षेत्र में सामान बेचने की सारी राजनीति, लक्ष्य उपलब्धियाँ सब अंग्रेजी में ही होता है। जो हिंदी अपने निचले आधार पर मजबूती से खड़ी है, वह शिखर की ओर बढ़ते ही नदारद दिखने लगती है। आधार की भाषा को शिखर की भाषा में कैसे तब्दील किया जाए, यह हिंदी की सबसे बड़ी चुनौती है। यह एक विचारणीय बिंदु है कि एक छोटे से देश इंग्लैण्ड की भाषा अंग्रेजी कैसे पूरी दुनिया में फैली और विश्व भाषा बन गई। ऐतिहासिक बदलाव में यह औद्योगिक क्रान्ति की भाषा बन गई। खुद हिंदी भी जब स्वतंत्रता संग्राम की भाषा बनी तब पूरे देश में फैली।[46] 4–5 करोड़ की भाषा वाले समाज अपनी अस्मिता के लिए फाइट करते हैं, तो सब संजीदा हो जाते हैं। लेकिन हिंदी वाला जरा सा बोले तो अंध हिंदीवादी कहलाने लगता है। इस अन्यायपूर्ण व्यवहार के कारण ही हिंदी भाषा इतनी बड़ी होकर भी दीन–हीन सी दिखती है। भाषाएं एक दूसरे के सह अस्तित्व में रहा करती हैं, उनको रहना भी चाहिए और हिंदी इसकी गारण्टी करती है, क्योंकि वह सब भाषाओं के शब्द अपने में समाने का जिगरा रखती है। वह पुराने संस्कृतवादी, शुद्धतावाद से आगे निकल चुकी है और इसलिए अखिल भारतीय बनी।[47] अपनी भाषायी सांस्कृतिक विरासत को सहजने के लिए विद्यालयी शिक्षा में त्रिभाषा सिद्धान्त का ही कड़ाई से अनुसरण करना चाहिए। मातृभाषा, राष्ट्रभाषा और फिर अंतर्राष्ट्रीय भाषा को सिखाया जाना अनिवार्य होना चाहिए। भारत को अपनी समृद्ध संस्कृति को उजागर करने के लिए देशी भाषाओं को प्रोत्साहन देना बहुत जरूरी है। विदेशी भाषा में शिक्षा पाने से हमारा स्वतंत्र चिंतन कुंठित हो गया है।[48]

निष्कर्ष

हिंदी भाषा ने अपने जीवन काल में बहुत उतार–चढ़ाव देखे। एक समय वह भी था जब हिंदी बोलना राष्ट्रभक्ति का प्रतीक माना जाता था, तो एक दौर वह भी आया जब प्रांतीय भाषाओं को लगा, हिंदी हम पर थोपी जा रही है और यह हमारे अस्तित्व के लिए खतरा है। अंग्रेजी का वर्चस्व इतना बढ़ गया है कि आम से आम नागरिक अपने बच्चे को अंग्रेजी स्कूल में पढ़ाने को आतुर है। हिंदी प्रसार हेतु रस्मी कार्यक्रमों की बाढ़ सी आ जाती है। किन्तु इसके सदस्य भी आगे–पीछे अंग्रेजी में ही संवाद करते हैं। डिजिटल हिंदी, हिंदी एप आदि बढ़ रहे हैं किन्तु इसका प्रतिशत बहुत ही न्यूनतम है। वैश्वीकरण के युग में चीन, कोरिया व अन्य बहुत से देश हिंदी सीख रहे हैं, विज्ञापन हिंदी में बढ रहे हैं। किन्तु केवल भारतीय उपभोक्ताओं को आकर्षित करने हेतु।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिंदी वर्तमान में बहुत ही विरोधाभासी स्थिति से गुजर रही है। वैश्विक स्तर पर हिंदी को अपनाने की बात यदि छोड़ भी दी जाए तो भी यदि दुनिया की दूसरे नम्बर की सबसे बड़ी आबादी ही, बिना किसी प्रांतीय संकीर्ण मानसिकता के साथ हिंदी बोले, अंग्रेजी को कामकाज व व्यापार की भाषा तक सीमित रखा जाए, अंग्रेजी

बोलने वालों को विशिष्ट सम्मानीय नजरों से ना देखा जाए तो निश्चित ही हिंदी विश्व की नं॰ 1 भाषा बन जाएगी। पहले घर में सम्मान होना जरूरी है, फिर यह अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुँचेगी। हिंदी तो विश्व प्रेम, बंधुत्व, अंहिसा, समरसता और सौहार्द की भाषा है। संक्रमण कालीन दौर में जो भी भाषा भारत में आई, हिंदी ने उसके शब्दों को अपने में आत्मसात् कर लिया। अतः समस्त भारतवासियों को अपनी हिंदी भाषा पर गर्व होना चाहिए। हिंदी भारत के गौरव एवं सांस्कृतिक पहचान है। यह राष्ट्र की एकता–अखण्डता को बनाए रखने के लिए अत्यंत आवश्यक है। हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि मैथिलीशरण गुप्त ने तो अपने देश के प्रति गौरव व अभिमान न रखने वाले को 'नरपशु' कहकर जन्मभूमि के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है।[49]

जिसको न निज गौरव, न निज देश पर अभिमान है।
वह नर नहीं, नर पशु निरा है और मृतक समान है।।

अतः समस्त भारत वासियों को राष्ट्रकवि की इन पक्तियों के साथ गर्व से हिंदी भाषा की उन्नति हेतु सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. पाण्डेय, पृथ्वी नाथ, मानक सामान्य हिंदी, अरिहन्त, पब्लिकेशन, मेरठ, पृ॰सं॰–01
2. पाण्डेय, श्रुतिकांत , हिंदी शिक्षण : अभिनव आयाम, एक्सिस पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2010, पृ॰सं॰–03
3. उपरोक्त, पृ॰सं॰–05
4. गुप्त, तनसुखराम निबंध सौरभ, सूर्य भारती प्रकाशन, दिल्ली, 2000, पृ॰सं॰–409
5. द्विवेदी, हजारी प्रसाद भाषा साहित्य और देश, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ॰सं॰–09
6. पाण्डेय, श्रुतिकांत पूर्वोक्त, पृ॰सं॰–12
7. चौधरी, बासुकी नाथयुवराज कुमार, भारतीय शासन व राजनीति, ऑरियंट ब्लैकस्वान, 2011, पृ॰सं॰–515
8. विष्णु पुराण 3–1
9. सिंह, शंकर दयाल हिंदी राष्ट्रभाषा, राजभाषा, जनभाषा, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, 1995, पृ॰सं॰–65
10. उपरोक्त, पृ॰सं॰–56
11. निर्मल, सुरेश चन्द हिंदी भाषा, इंडियन बुक डिपो, गाजियाबाद,1982, पृ॰सं॰–104
12. कपूर, श्याम चन्द हिंदी साहित्य का इतिहास, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 1999, पृ॰सं॰–42
13. सिंह, शंकर दयाल पूर्वोक्त, पृ॰सं॰–57
14. तिवारी, भोलानाथ हिंदी भाषा का अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ, पाण्डुलिपि, प्रकाशन नई दिल्ली, 1997, पृ॰सं॰–41
15. उपरोक्त, पृ॰ सं॰–42
16. कपूर, श्याम चन्द, पूर्वोक्त
17. चौधरी, बासुकी नाथयुवराज कुमार, पुर्वोक्त, पृ॰सं॰–515
18. सिंह, नागेन्द्र कुमार भारतीय शासन एवं राजनीति व राजव्यवस्था, ए॰ एस॰ आर॰ पब्लिकेशन, गाजियाबाद, 2014, पृ॰सं॰–72
19. उपरोक्त, पृ॰सं॰–75
20. सईद, एस॰ एम॰, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, भारत बुक सेण्टर, लखनऊ, 2011, पृ॰सं॰–496
21. निर्मल सुरेश चन्द, पूर्वोक्त, पृ॰सं॰–97
22. सईद, एस॰ एम॰ पूर्वोक्त,
23. उपरोक्त, पृ॰सं॰–500
24. सिंह, नागेन्द्र कुमार, पूर्वोक्त, पृ॰सं॰–79
25. सईद, एस॰ एम॰ पूर्वोक्त, पृ॰सं॰–496
26. काश्यप, सुभाष हमारा संविधान, राष्ट्रीय पुस्तक नियास, भारत, 2015, पृ॰सं॰–263
27. शर्मा, जी॰ एल॰ डा॰ वाई॰ के॰ शर्मा, भारत में सामाजिक समस्याएं, यूनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर, 2009, पृ॰सं॰–354
28. उपरोक्त, पृ॰सं॰–356
29. प्रतियोगिता दर्पण

30. शर्मा, जी॰ एल॰, वाई॰ के॰ शर्मा, पूर्वोक्त, पृ॰सं॰–353
31. निर्मल, सुरेश चन्द पूर्वोक्त, पृ॰सं॰–102
32. स्वाधीन, शशि नारायण राजभाषा हिंदी : समस्याएं एवं समाधान, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2007, पृ॰सं॰–15
33. स्वाधीन, शशि नारायण पूर्वोक्त,पृ॰सं॰–58
34. प्रतियोगिता दर्पण, अगस्त–2014, पृ॰सं॰–183–184
35. नगेन्द्र, हरदयाल, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स, नौएडा, 2015, पृ॰सं॰–384
36. स्वाधीन, शशि नारायण पूर्वोक्त, पृ॰सं॰–37
37. नायक, जीवन भाषा और साहित्य, कुछ समस्याएं, कला प्रकाशन, दिल्ली, 1978, पृ॰सं॰–43–44
38. तिवारी, डा॰ भोलानाथ पूर्वोक्त, पृ॰सं॰–32
39. सिंह, शंकर दयाल पूर्वोक्त, पृ॰सं॰–74
40. उपरोक्त, पृ॰सं॰–75
41. उपरोक्त, पृ॰सं॰–72
42. स्वाधीन शशि नारायण, पूर्वोक्त, पृ॰सं॰–61
43. अमर उजाला, दूसरी बड़ी मातृभाषा है हिंदी, दिनांक–14.09.16
44. अमर उजाला, सुधीश पचौरी–हिंदी के हक का दावा, दिनांक–14.09.16
45. हिन्दुस्तान, गौरव : शरमाइए नहीं इतराइए कि आप हिंदी भाषी हैं, दिनांक–14.09.16
46. हिन्दुस्तान, संपादकीय, उन्नति की भाषा, दिनांक, 14.09.16
47. अमर उजाला, सुधीश पचौरी–हिंदी के हक का दावा, पूर्वोक्त
48. द्विवेदी, हजारी प्रसाद पूर्वोक्त, पृ॰सं॰–44
49. टण्डन, किरण भारतीय संस्कृति, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1994, पृ॰सं॰–21